

रामचरितमानस के बाद का भारत: लोक-अध्यात्म और सांस्कृतिक उदय

विश्वदीपक उपाध्याय

<https://doi.org/10.61410/had.v21i3.359>

शोध सार (Abstract)

सोलहवीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' न केवल मध्यकालीन हिंदी साहित्य की एक कालजयी कृति है, बल्कि यह भारतीय उपमहाद्वीप के सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिदृश्य को पुनर्परिभाषित करने वाला एक युगांतरकारी मोड़ भी है। प्रस्तुत शोध पत्र में यह विश्लेषण किया गया है कि रामचरितमानस की रचना के पश्चात भारतीय समाज में किस प्रकार लोक-भाषा (अवधी) के माध्यम से वैदिक एवं दार्शनिक ज्ञान का समाजीकरण हुआ। यह अध्ययन रामचरितमानस के उपरांत भारत में उपजे 'लोक-अध्यात्म', अध्यात्म के लोकतंत्रीकरण, सामाजिक समन्वय और सांस्कृतिक चेतना के विविध आयामों का ऐतिहासिक एवं समाजशास्त्रीय अनुशीलन प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, औपनिवेशिक काल में गिरमिटिया मजदूरों के साथ इसके वैश्विक प्रसार और आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता का विशद विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords)

रामचरितमानस, लोक-अध्यात्म, अवधी, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, लोकतंत्रीकरण, रामलीला, समन्वयवाद, भक्ति आंदोलन, वैश्विक भारतीय डायस्पोरा।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय इतिहास का उत्तर-मध्यकाल (16वीं से 17वीं शताब्दी) सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल का काल था। मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण और पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं के क्षरण के दौर में, भारतीय जनमानस को एक ऐसे नैतिक और आध्यात्मिक अवलंब की आवश्यकता थी जो उन्हें संभल प्रदान कर सके। इस ऐतिहासिक संधि-स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का प्रादुर्भाव हुआ।

संस्कृत भाषा के प्रभुत्व और पारंपरिक शास्त्रीय जकड़न से इतर, तुलसीदास ने जनभाषा 'अवधी' में रामकथा का गायन करके ज्ञान और अध्यात्म के द्वार सर्वसाधारण के लिए खोल दिए। रामचरितमानस केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं रहाय यह भारतीय जीवन पद्धतियों, लोक-मूल्यों, पारिवारिक मर्यादाओं और सामाजिक समरसता का विधानपत्र बन गया। प्रस्तुत शोध पत्र पाँच मुख्य अध्यायों के माध्यम से यह रेखांकित करता है कि रामचरितमानस के पश्चात भारत की सांस्कृतिक आत्मा ने किस प्रकार एक नवीन संजीवनी प्राप्त की।

अध्याय 9: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं लोकभाषा का सशक्तिकरण

9.9 सोलहवीं सदी का भारत और सामाजिक-राजनीतिक वातावरण

- असिस्टेंट प्रोफेसर – हिंदी विभाग, प्रवक्ता – श्री ब्रजेंद्र जनता महाविद्यालय, विसावर, हाथरस

रामचरितमानस की रचना संवत् १६३१ (सन १५७४) में प्रारंभ हुई। यह वह समय था जब संपूर्ण भारतवर्ष में राजनीतिक अस्थिरता, बाह्य संस्कृतियों का प्रभाव और पारंपरिक मूल्यों का क्षरण हो रहा था। जनसामान्य में हताशा और किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति थी। ऐसे समय में लोकमानस को एक आदर्श नायक और स्पष्ट नैतिक संरचना की आवश्यकता थी।

१.२ 'भाषा' बनाम 'संस्कृत' : अवधी का भाषाई पुनर्जागरण

तुलसीदास का सबसे बड़ा क्रांतिकारी कदम था— संस्कृत के स्थान पर 'भाखा' यानी अवधी का चयन। उस समय पंडित वर्ग में लोकभाषा में धर्मग्रंथ लिखने का विरोध था। तुलसीदास ने इस रूढ़ि को तोड़ते हुए घोषणा की: "का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।।"

उन्होंने वैदिक उपनिषदों, वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्भागवत के गूढ़ दर्शन को अवधी के सरल छंदों (चौपाई, दोहा, सोरठा) में ढाल दिया।

आयाम	पूर्व—मानस काल (शास्त्रीय परंपरा)	उत्तर—मानस काल (लोक परंपरा)
मुख्य भाषा	संस्कृत (अभिजात वर्ग तक सीमित)	अवधी/लोकभाषा (जनसामान्य हेतु सुलभ)
ज्ञान का प्रसार	गुरुकुल एवं मंदिर प्रांगण तक	गाँव, चौपाल, गृहस्थ जीवन एवं लोक-स्मृति
सामाजिक दायरा	उच्च वर्ण एवं विद्वान	सर्वसमाज (स्त्री, शूद्र, वनांचल वासी)
माध्यम	लिखित पांडुलिपियाँ एवं प्रवचन	मौखिक गायन, कीर्तन एवं रामलीला

१.३ ज्ञान का समाजीकरण और पांडित्य परंपरा को चुनौती

अवधी में रामचरितमानस के आगमन से ज्ञान पर एकाधिकार समाप्त हो गया। जनसामान्य जो संस्कृत से अनभिज्ञ था, वह स्वयं अध्यात्म का पाठ और चिंतन करने लगा। इसने भारतीय भाषा-साहित्य में एक अभूतपूर्व क्रांति का सूत्रपात किया, जिससे क्षेत्रीय भाषाओं का विकास तीव्र हुआ।

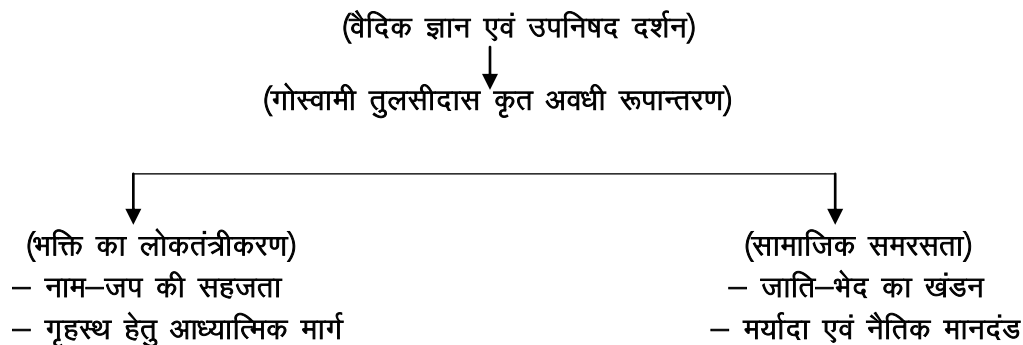
अध्याय २: लोक-अध्यात्म और भक्ति का लोकतंत्रीकरण

२.१ सगुण और निर्गुण का अद्भुत समन्वय

रामचरितमानस से पूर्व भक्ति आंदोलन मुख्य रूप से दो धाराओं में बँटा हुआ था— कबीर और जायसी की निर्गुण धारा तथा सूरदास और वल्लभ संप्रदाय की सगुण धारा। तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से सगुण और निर्गुण के बीच के कृत्रिम अंतर को समाप्त किया: "अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।"

२.२ अध्यात्म का लोकतंत्रीकरण

रामचरितमानस ने अध्यात्म को कठिन योग-साधना और यज्ञ-कर्मकांडों से निकालकर सहज 'नाम-जप' और 'आचरण' में बदल दिया। मुक्ति का अधिकार अब केवल संन्यासियों के लिए नहीं, बल्कि गृहस्थों, नारियों और समाज के अंतिम व्यक्ति के लिए भी सुलभ हो गया।



२.३ शबरी और निषादराज के प्रसंग का सांस्कृतिक प्रभाव

रामचरितमानस में राम का शबरी के झूठे बेर खाना और निषादराज (गुह) को हृदय से लगाना केवल कथा के प्रसंग मात्र नहीं हैं। इन्होंने उत्तर-भारत के लोक-अध्यात्म में वर्ण-व्यवस्था की कठोरता को ध्वस्त करने का कार्य किया। इसने भक्ति के क्षेत्र में जातिगत श्रेष्ठता के स्थान पर 'भाव' और 'प्रेम' को सर्वोपरि स्थापित किया।

अध्याय ३: सामाजिक समरसता और समन्वयवादी चेतना

३.१ शैव और वैष्णव संप्रदायों का मिलन

मध्यकालीन भारत में शैव (शिव के उपासक) और वैष्णव (विष्णु के उपासक) संप्रदायों के मध्य भारी वैमनस्य था। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम के मुख से कहलाया: “शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।”

मानस में रामेश्वरम स्थापना का प्रसंग शैव और वैष्णव मतों के मध्य ऐतिहासिक सेतु बना, जिसने भारतीय समाज को धार्मिक गृहयुद्ध और विभाजन से बचाया।

३.२ रामराज्य: एक आदर्श सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना

रामचरितमानस में वर्णित 'रामराज्य' की अवधारणा केवल एक धार्मिक कल्पना नहीं, बल्कि एक लोक-कल्याणकारी राज्य का रूपक (Model) है।

- दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।। (सर्वांगीण स्वास्थ्य एवं कल्याण)
- सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।। (सामाजिक सौहार्द एवं कर्तव्य-बोध)
- अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब निरुज शरीरा।। (मानवीय समृद्धि एवं आरोग्य)

यह रामराज्य की संकल्पना कालांतर में महात्मा गांधी के 'स्वराज' और 'रामराज्य' के विचार का आधार बनी।

अध्याय ४: सांस्कृतिक अभिव्यक्ति: रामलीला, संगीत एवं मौखिक परंपरा

४.१ रामलीला की शुरुआत और लोक-नाट्य का उदय

रामचरितमानस की रचना के पश्चात उत्तर भारत में 'रामलीला' की परंपरा व्यापक रूप से विकसित हुई। काशी (वाराणसी) की विश्वप्रसिद्ध रामनगर की रामलीला इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। रामलीला ने अमूर्त ग्रंथ को मूर्त लोक-नाट्य में परिवर्तित कर दिया, जिससे साक्षर और निरक्षर दोनों समान रूप से जुड़ सके।

४.२ संगीत, लोकधुनों और मौखिक परंपरा

रामचरितमानस को तुलसीदास ने शास्त्रीय रागों के साथ-साथ लोक-धुनों में गाने योग्य बनाया। 'चौपाई' छंद भारतीय जनमानस के कंठ में ऐसा बसा कि विवाह, मुंडन, त्योहारों और दैनिक संध्या-आरती में मानस की चौपाइयों का गायन अनिवार्य अंग बन गया। रामचरितमानस का सांस्कृतिक प्रभाव:

- लोक-नाट्य (काशी, चित्रकूट एवं संपूर्ण भारत की रामलीलाएँ)
- मौखिक परंपरा (अखंड रामायण पाठ, मानस मंडली)
- संगीतात्मकता (अवधी लोकधुनों और चौपाई-गायन का विस्तार)
- कला एवं स्थापत्य (पट्टचित्र, भित्तिचित्र एवं मंदिर स्थापत्य)

४.३ गृहस्थ जीवन का नैतिक विधान

मानस ने भारतीय परिवारों में संबंधों के मानदंड तय किएकृभ्रातृ-प्रेम (राम-भरत), पति-पत्नी धर्म (राम-सीता), और सेवक-स्वामी भाव (राम-हनुमान)। इसने भारतीय परिवार व्यवस्था को सदियों तक टूटने से बचाए रखा।

अध्याय ५: वैश्विक प्रसार, औपनिवेशिक काल और आधुनिक प्रासंगिकता

५.१ औपनिवेशिक काल और गिरमिटिया मजदूर (Diaspora)

१९वीं शताब्दी में जब अंग्रेजों द्वारा भारतीय श्रमिकों (गिरमिटिया मजदूरों) को फिजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद एवं टोबैगो, सूरीनाम और गुयाना ले जाया गया, तो उनके पास भौतिक संपत्ति के नाम पर प्रायः केवल एक पुस्तक होती थी— रामचरितमानस।

- सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा: कठिन औपनिवेशिक परिस्थितियों और यातनाओं के बीच रामचरितमानस ने प्रवासी भारतीयों की भाषा, धर्म और सांस्कृतिक जड़ों को जीवित रखा।
- वैश्विक उपस्थिति: आज भी इन देशों में रामायण मंडली और मानस पाठ की परंपरा उत्तनी ही जीवंत है।

५.२ आधुनिक युग और डिजिटल काल में प्रासंगिकता

२१वीं सदी के वैश्वीकरण और मानसिक तनाव के युग में, रामचरितमानस जीवन-प्रबंधन (Life Management) का एक उत्कृष्ट स्रोत बनकर उभरा है। मानस के सुंदरकांड का पाठ संबल और सकारात्मक ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

‘रामचरितमानस के बाद का भारत’ एक ऐसा भारत है जिसने अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पुनः पहचाना और लोक-भाषा के माध्यम से अध्यात्म का पुनर्जागरण किया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के रूप में केवल एक महाकाव्य की रचना नहीं की, बल्कि भारत की विखंडित आत्मा को समरसता, मर्यादा और समन्वय के धागे में पिरोया।

इस ग्रंथ ने भक्ति को मठों से निकालकर लोक-जीवन में स्थापित किया, वर्ण-भेद की दीवारों को ढहाया और भारतीय संस्कृति को एक ऐसा वैचारिक आधार प्रदान किया जिसने औपनिवेशिक आक्रमणों के बावजूद भारत की सांस्कृतिक चेतना को अक्षुण्ण रखा। आज भी रामचरितमानस भारतीय जनमानस का नैतिक दिशा-निर्देश और वैश्विक स्तर पर भारतीय मूल्यों का ध्वजवाहक बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ (References)

1. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (1951). हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. शुक्ल, रामचंद्र (1939). हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. पांडेय, डॉ. रामदेव (2005). तुलसीदास और उनका युग. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. Lutgendorf, Philip (1991). The Life of a Text: Performing the Ramcaritmanas of Tulsidas- University of California Press.
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ (2008). लोकवादी तुलसीदास. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. सिंह, डॉ. नामवर (1998). भक्ति और लोक-संस्कृति. राजकमल ग्रंथावली, नई दिल्ली।